विश्वकर्मा की शिवभक्ति

पूर्वकाल में त्वष्टा प्रजापति के पुत्र विश्वकर्मा हुए, जो ब्रह्माजी के द्वितीय स्वरूप हैं। उपनयन-संस्कार हो जाने पर वे गुरुकुल में रहकर भिक्षान्नभोजन एवं गुरुशुश्रूषा करने लगे। एक दिन वर्षाकाल आने पर गुरु ने उन्हें आज्ञा दी-'वत्स! तुम मेरे लिये एक पर्णशाला बना दो, जहाँ वर्षा का कष्ट न हो, जो कभी नष्ट और पुरानी न हो।' तत्पश्चात् गुरुपत्नी ने आज्ञा दी-'तुम मेरे लिये चोली बना दो, जो मेरे शरीर के अनुरूप हो, न कसी हुई हो और न ढीली ही हो। वह कपड़े के बिना केवल वल्कल से बनी हो, बहुत सुन्दर हो और सदा स्वच्छ रहनेवाली हो।' इसके बाद गुरु के पुत्र ने आदेश दिया-'मेरे लिये दो खड़ाऊँ तैयार करो, जिनपर चढ़कर मेरे पैरों को कभी कीचड़ का स्पर्श न हो, उनमें चमड़े आदि का बन्धन न लगा हो, जो दौड़ते समय भी मुझे आराम देनेवाली हो तथा जिनके द्वारा मैं स्थल-भूमि की भाँति जल के ऊपर भी अच्छी तरह चल सकूँ।' अन्त में गुरुपुत्री बोली-'मेरे लिये अपने ही हाथ से दो सोने के कर्ण फूल बना दो। साथ ही लड़कियों के खेलने योग्य खिलौने भी दो, जो हाथी दाँत के बने हुए और तुम्हारे ही हाथ से तैयार किये गये हों।'

तब विश्वकर्मा ने सबके आगे 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा' इस प्रकार प्रतिज्ञा की और वन के भीतर प्रवेश करके वे चिन्ता करने लगे। कुछ करना तो जानते नहीं थे, परंतु 'मैं सब करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा सबके सामने कर चुके थे। अत: मन-ही-मन इस विचार में पड़े कि 'क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन मुझे सहायता देगा, मैं किसकी शरण में जाऊँ। जो मूढ़ मानव गुरु, गुरुपत्नी और गुरु-पुत्र की आज्ञा स्वीकार करके उसे पूर्ण नहीं करता, वह नरकगामी होता है। ब्रह्मचारियों का प्रधान धर्म गुरुशुश्रूषा ही है। गुरुजनों की आज्ञा का पालन न करने पर जो दोष लगेगा, उससे मेरा उद्धार कैसे होगा। मैं इस वन में रहकर उनकी बात कैसे पूरी कर सकूँगा। गुरुजनों की तो बात दूर रही, दूसरे छोटे मनुष्यों के भी कार्य को 'हाँ' कहकर स्वीकार कर लेने पर जो उसे पूरा नहीं करता, वह नरकगामी होता है। मैं अज्ञानी हूँ, असहाय हूँ। इन सब कार्यों को मैं कैसे पूर्ण कर सकूँगा। इन्हें स्वीकार तो मैंने भय के कारण कर लिया है।'

वन के मध्य भाग में बैठे हुए विश्वकर्मा जब इस प्रकार चिन्ता में लगे थे, उसी समय उन्हें अकस्मात् एक तपस्वी महात्मा दिखायी दिये। उनको नमस्कार करके विश्वकर्मा ने पूछा-'आप कौन हैं, जो मेरे मन को बहुत सुखी कर रहे हैं? आप तापस रूप में मेरे प्रारब्ध हैं अथवा साक्षात् करूणावरुणालय भगवान् शिव ही प्रकट हो गये हैं। आप जो हों, सो हों, आपको नमस्कार है। मुझे उपदेश दें, मैं गुरु की, गुरुपत्नी की तथा गुरुपुत्रों की आज्ञा का पालन कैसे कर सकता हूँ, इसके लिये कोई उपाय बताइये।' वन में उस ब्रह्मचारी बालक के ऐसा कहने पर तपस्वी बोले-'त्वाष्ट्र! यह कौन-सी अद्‌भुत बात है? ब्रह्माजी भी भगवान् विश्वनाथ की कृपा से ही सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि करने में प्रवीण हुए हैं। यदि तुम काशी में जाकर सर्वज्ञ विश्वनाथजी की आराधना करोगे तो तुम्हारा विश्वकर्मा नाम सार्थक होगा। श्रीकाशी

पुरी में विश्वनाथजी की कृपा से कोई भी मनोरथ दुर्लभ नहीं है। बालक! यदि तुम अपने मनोरथों को प्राप्त करना चाहते हो तो विश्वनाथजी के स्थान काशीपुरी में जाओ।'

इस प्रकार तपस्वी का वचन सुनकर विश्वकर्मा ने पूछा–महात्मन्! भगवान् शिव का वह आनन्दवन–काशी कहाँ है?

तपस्वी बोले–मैं भी वहाँ जाने की इच्छा रखता हूँ, मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें पहुँचा देता हूँ। तब उन अतिशय कृपालु महर्षि के साथ विश्वकर्मा विश्वनाथजी की पुरी में गये। वहाँ जाने से उनका मन स्वस्थ हो गया। विश्वकर्मा को काशी में पहुँचाकर वे तपस्वी कहीं असम्भावित गति से चले गये। विश्वकर्मा सोचने लगे, 'कहाँ तो उस वन में व्याकुल चित्तवाला मैं और कहाँ वे तापस मुनि, जो मुझे उत्तम उपदेश देकर यहाँ ले आये। यह सब उन्हीं त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव की लीला है, जिनके भक्त को कहीं कुछ भी दुर्लभ नहीं है। मेरी गुरुभक्ति ही भगवान् शिव को प्रसन्न करने में कारण हुई है। उसी से सन्तुष्ट होकर परम दयालु भगवान् विश्वनाथ ने मुझपर अनुग्रह किया है। यदि मुझपर उनकी कृपा न होती तो तपस्वी का सङ्ग कैसे प्राप्त होता। मनुष्य जब साधु पुरुषों द्वारा सेवित वेदोक्त मार्ग का त्याग नहीं करता, तभी उसपर भगवान् विश्वनाथ अपनी उत्तम दया का विस्तार करते हैं।'

इस प्रकार अपने ऊपर भगवान् विश्वेश्वर की कृपा का समर्थन करके विश्वकर्मा ने पवित्र भाव से एक शिवलिङ्ग को स्थापित किया और स्वस्थचित्त होकर भगवान् विश्वनाथ की आराधना की। वे वन से ऋतु के अनुकूल बहुत से पुष्प लाकर स्नान करके नित्य भगवान् शिव की पूजा करते तथा कन्द, मूल और फल से जीविका चलाते थे। इस प्रकार शिवलिङ्ग की आराधना में मन लगाये हुए विश्वकर्मा के जब तीन वर्ष व्यतीत हो गये, तब करुणानिधान भगवान् शिव उनके ऊपर प्रसन्न हो उसी लिङ्ग से प्रकट होकर बोले–'त्वाष्ट्र! मैं तुम्हारी दृढ़ भक्ति से बहुत सन्तुष्ट हूँ, तुम कोई वर माँगो। बालक! गुरु, गुरुपत्नी तथा गुरुपुत्रों ने तुमसे जो कुछ माँगा है, वह सब पूर्ण करने की शक्ति तुम्हें प्राप्त होगी। धातु, लकड़ी, पत्थर, मणि, रत्न, फूल, वस्त्र, कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थ, जल, कन्दमूल, फल, द्रव्य और बल्कल–इन सब वस्तुओं का काम बनाने की विद्या तुम्हें प्राप्त होगी। जिस–जिस पुरुष की जैसे–जैसे घर या मन्दिर बनवाने की रुचि होगी, उस–उस के सन्तोष के लिये तुम सब कुछ उसी प्रकार करने की कला में प्रवीण होओगे। सब प्रकार के शृङ्गार और आभूषणों की रचना, सब प्रकार की रसोई के संस्कार, सभी तरह के शिल्पकर्म, नृत्य, गीत और वाद्यसम्बन्धी सब वस्तुओं को बनाने की विधि तुम्हें ज्ञात होगी। शिल्पनिर्माण की कला में तुम दूसरे ब्रह्मा समझे जाओगे। अनेक प्रकार के यन्त्र (मशीन), भाँति–भाँति के अस्त्रों का निर्माण, जलाशय (कूप, तड़ाग, बावली आदि) तथा उत्तम दुर्ग की रचना का भी तुम्हें ज्ञान होगा। तुम मेरे वरदान से सम्पूर्ण कलाओं के ज्ञाता हो जाओगे। सारी इन्द्रजाल विद्या भी तुम्हारे अधीन होगी। सब कर्मों में कुशलता, सब बुद्धियों की श्रेष्ठता और सबकी मनोवृत्तियों का ज्ञान तुम्हें स्वतः प्राप्त होगा। सम्पूर्ण विश्व में अखिल कर्मों का ज्ञाता होने के कारण तुम्हारा यह विश्वकर्मा

नाम यथार्थ होगा।'

विश्वकर्मा बोले – भगवन्! मैंने अज्ञ होते हुए भी यह जो शिवलिङ्ग स्थापित किया है, इसकी आराधना करके मेरी ही भाँति दूसरे लोग भी सद्बुद्धि के पात्र हों।

महादेवजी ने कहा – 'एवमस्तु'! तुम्हारे द्वारा स्थापित लिङ्ग की आराधना करनेवाले सब लोग सद्बुद्धि के पात्र हों और सभी युक्ति की दीक्षा के अधिकारी बनें। तात! ब्रह्माजी के वरदान से जब दिवोदास यहाँ के राजा होंगे, तब तुम मेरे आदेश से मेरा मन्दिर निर्माण करोगे। विश्वकर्मन्! अब तुम जाओ और गुरुजी की आज्ञा के पालन का यत्न करो, क्योंकि जो गुरु के भक्त हैं, वे निःसन्देह मेरे ही भक्त हैं। भक्तों का अभीष्ट पूर्ण करनेवाला मैं तुम्हारे द्वारा स्थापित उस अर्चाविग्रह में निरन्तर निवास करूँगा। अङ्गारेश्वर से उत्तर भाग में जो तुम्हारे स्थापित किये हुए इस लिङ्ग की आराधना करेंगे, उन्हें पग – पग पर अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति होगी।'

ऐसा कहकर महादेवजी अन्तर्धान हो गये और विश्वकर्मा अपने गुरु के पास गये। गुरु की अभिलाषा पूर्ण करके वे अपने घर चले गये। घर पर भी अपने सत्कर्म से उन्होंने माता – पिता को सन्तुष्ट किया और सदा उनकी आज्ञा का पालन किया। तत्पश्चात् वे काशी चले आये और अपने द्वारा स्थापित शिवलिङ्ग की आराधना में संलग्न हो गये।

(उपर्युक्त कथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के संक्षिप्त स्कंदपुराणांक के काशीखण्ड के अध्याय 86 पर आधारित है।)

❀❀❀❀❀❀

भगवान् शिव एक स्थल पर पार्वती से कहते हैं कि शूद्र भी यदि जितेन्द्रिय होकर पवित्र कर्मों के अनुष्ठान से अपने अन्तःकरण को शुद्ध बना लेता है तो वह द्विज की ही भाँति सेव्य होता है – यह साक्षात् ब्रह्माजी का कथन है।

कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः।
शूद्रोऽपि द्विजवत् सेव्य इति ब्रह्माब्रवीत् स्वयम्।।

(महाभारत अनुशासनपर्व 143/48)